न थकी यात्रा

न थकी यात्रा

शभू विभाकर

सघी प्रकाशन
जयपुर उदयपुर

प्रकाशक विजेन्द्र कुमार सघी
सघी प्रकाशन,
53 वापू बाजार,
उदयपुर-313001 (राज०)

मूल्य चालीस रुपये
सघी प्रकाशन जयपुर उदयपुर द्वारा प्रकाशित / प्रथम सस्करण 1989 /

शान्ति मुद्रणालय दिल्ली 110032 म मुद्रित।

NA THAKI YATRA by Shambhoo Vibhaker Rs 40 00

पथ ही जिसका रहा गन्तव्य है

यह पंक्ति शंभू विभाकर की है जिनका जन्म 1939 में और निधन 1975 में हुआ। मृत्यु के समय उनकी आयु केवल छत्तीस वर्ष की थी। वे रक्त-कैन्सर से पीड़ित थे।

युवा कवि शंभू विभाकर बूंदी में जन्मे थे। किसी समय बूंदी काव्य और पांडित्य परम्परा के लिए इतना विख्यात था कि उसे 'छोटी काशी' कहा जाने लगा। शौर्य और स्वाभिमान की कविता करने वाले कवि सूर्यमल मीसण ने बूंदी का नाम अमर कर दिया। बाद में भी वहां की जमीन अनुर्वरा नहीं हुई। आजादी के संघर्ष में बूंदी के निर्भीक पत्रकारों ने अंग्रेजी हुकूमत के जुल्मों के सामने घुटने नहीं टेके। लज्जाराम मेहता, ऋषिदत्त मेहता उन्हीं बड़े पत्रकारों के नाम थे। महाजनी सभ्यता के विरुद्ध नये तेवर की कविता लिखने वाले गोविन्द व्यास भी शंभू विभाकर की तरह ही कम आयु में मर गए।

शंभू विभाकर के साथ बूंदी की यह साहित्यिक-सांस्कृतिक परंपरा फिर से याद की जा सकती है और इसी के साथ यह स्थापित करने का अवसर मिलता है कि किसी भी कवि के रचना कर्म के पीछे सदा से एक अविछिन्न मानवीय इतिहास और परंपरा का आलोक फैला होता है। यह बात दूसरी है कि किसी खास कवि में उसका प्रतिफल कैसे होता है?

यह कवि स्कूल में अर्थशास्त्र के व्याख्याता थे। उनके रजिस्टर, डायरी से पता लगता है कि कविताओं के साथ वे कहानियां भी लिखते थे। इन कहानियों के हाशिये पर विभाकर स्त्रियों की सुंदर मुखाकृतियां बनाते रहे। इन स्त्रियों के केश लम्बे और सघन हैं, वे तरुण होती हुई भी किशोरियां लगती हैं।

अपनी कविताओं में शंभू विभाकर रूमानी रुझान के कवि की तरह स्थापित होते हैं। उनकी रचनाओं में प्रकृति की एक मोहक दुनिया के बीच प्रेम के खिन्न कर देने वाले विषाद-युक्त आग्रह और कथन रहते हैं। यह बात देखने योग्य है कि विषाद के ये संदेश प्रकृति की सम्मोहक दुनिया से अलग नहीं होते इसलिए वे प्रेमियों की 'बरबाद और चौपट हुई दुनिया के

धडहर रही नगत। यहा बार-बार ऐसा लगता है कि जो कुछ भी यहां क
ना रहा है—इन उफनती हुई नदियों के किनारे या कि वेणु कुंजों
अमराइयों म अथवा कि इन रंगीन संध्याओं के दरवाजा का ठेलना हुआ
और यह कहना कि 'प्राण वल्लभ! भूल न जाना परदेसी को'—यह कवल
तात्कालिक प्रसंग है। अन्त म यह स्मृति लौट आने वाला म है।

शमू विभाकर की इन कविताओं का दृश्यांकन घुमावदार और जटिल
नहीं है एवं हल्की-सी भावाकुलता के स्पर्श और सहजता के कारण य
रचनाए उनकी सबसे अच्छी और विश्वसनीय होती हैं। उनमें मनुष्य से प्रेम
करने की उत्कट इच्छा बार-बार अभिव्यक्त होती है कि सौ सौ जन्मांतरों
का सपना साथक होता लगता है

> सौ सौ जनम प्रतीक्षा कर लू
> प्रिय। मिलन का वचन भरो तो
> पलका-पलका मूल बुनाऊँ
> असुवन साचू सौरभ गलिया
> भवरो पर पहरे बिठला दू
> कही न जूठी कर दे कलिया
> फूट पडे पतझर स लाली
> तुम अरुणाय चरण धरो तो

युवा कवियों की तरह विभाकर भी शब्दों की जादुई दुनिया बनाने म लगे
रहते हैं। इन कविताओं मे ताजगी तो कम होती है लेकिन रूपाकृतियों का
तिलस्म दखने लायक होता है।

> शोख चचल नन से जब मारते तुम बान
> जिंदगी जीना मुझे लगता तनिक आसान
> वक्ष पर हिलती उभरती वेणिया छविमान
> तब मचलती झील का होता मुझ है भान

विभाकर की ये रचनाए स्त्रैण और कामुक कोटि की नहीं हैं। इनकी छद
रचना दोष रहित है। इन कविताओ पर प्रसिद्ध कवि अंचल की रुमानी
कविताओ का गहरा असर है।

इस कवि की दूसरी विशेषता यह है कि रूपों के सारे सम्मोहन के बाद
भी वह अपनी खुरदरी, ऊबड खाबड, शोक ग्रस्त गरीब दुनिया से न तो दूर
होता है और न बेखबर। सुधीन्द्र दा ने एक गीत को प्रारम्भ करते हुए
लिखा था 'कल्पना के पख पर बैठा हुआ मैं, पाव म जंजीर है ससार की'।

यह तथ्य रेखांकित करने योग्य है कि इस कवि न जितनी रचनाए प्रेम
और सुदरता पर लिखी हैं उतनी ही रचनाए एक पस्त हिम्मत राष्ट्र का

नयी जिंदगी और हौसला देने के लिए भी लिखी हैं। इन रचनाओं का उत्साह प्रदर्शनकामी नही है बल्कि वचनबद्ध होने मे है। कवि एक रचना मे यह प्रण करता है

लाख विहसो तिमिर की शहजादियो मेरे चरण पर
रखना मजिल अकेले भोर पहले ढोक लूगा
आ प्रिया की माग निज सिंदूर निशि भर पौंछ रखना
कल सुबह री भाल पर चिर चुबनी सिंदूर दूगा
चूडिया की खनक ! निशि भर तडपना मत मौन रहना
लौटते ही रव मधुर भुज बधनी भरपूर दूगा
आज तो सघष सागर के भवर मे फस हसा हू
मैं उषा के पूव साहिल को अरुण नव नूर दूगा
साहसी मदिरा पिये य पैर यो बढते रहे तो
आस गजगामी कुमारी विजय छिन मे मोह लूगा।

हम देखते हैं कि य कविताए बहुत उग्र शब्दो को काम मे नही लेतीं पर वे मनुष्य के इरादो को मजबूत बनाने मे मदद करती हैं।

विभाकर ने दिवाली पर बहुत सी रचनाए लिखी हैं और हर बार उन की यह कोशिश रही है कि ये बाहर का आलोक मनुष्य को अदर की अधेरी पर्तों तक चला जाए। ऐसा नही होता तो यह रोशनी की चमक-दमक उन्ह मरी हुई मछली की तरह लगती है। लिखा है

मानव की मानस कुटिया मे, नयनो की सूनी बगिया मे
सपनों की रोगी दुनिया मे, कितना घुप्प अधेरा साथी !
दीप शिखाओ के उत्सव का हृप मुझे नकली लगता है
मानव के उत्सग, त्याग म, प्रखर पसीने के पराग में
शक्ति बफ म नही आग मे ज्योतो सुख सवेरा साथी
बिन बदले यह जगत् मुझे तो मरी हुई मछली लगता है।

एक बात यह भी है कि विभाकर न धर्मांध हैं न जडमति। अपनी कविताओ मे वे बडी दुनिया बनाने की इच्छा व्यक्त करते हैं और अपन असाध्य रोग के बावजूद श्रम और साहस के गीत गाते हैं।

कुछ कविताओ मे कवि ने पत के द्रुत-गति से पढे जाने वाले छद को काम मे लिया है।

कुछ कविताओ म प्रकृति के उपादनो को लेकर विभाकर ने जो कौशल (विशेषतया विशेषणो की उपयुक्तता) बताया है वह उनकी सभावनाओ को प्रकट करता है। 'पगडडियों' के अतगत एक कविता है लू जिसे कवि ने 'अकुलीन कुचालिन, विरहिन, सौम्य मुदरी कहा है।

इस कविता में कवि की कल्पना का एकदम नया उन्मेष देखने को मिलता है। लिखा है—

> तरुण आम्र के स्कंध माथ पर नर्तन करती
> वृद्ध विटप के चरण थाम कर सिसकी भरती
> तप्त ताप झोली ले मादक ऐन्द्रजालिके
> यायावर पवमान सहचरी या गीता तुम ?

शंभू विभाकर के मन में बूंदी की बहुत-सी स्मृतियां हैं, बूंदी के पतझर की, सुखमल मौसम की बूंदी की नयनाभिराम प्रकृति की।

विभाकर की असमय मृत्यु से राजस्थान का एक संभावनाशील कवि चला गया है, यह दु ख अवर्णनीय है।

भवरजी शर्मा ने कोशिश करके यहां-वहां बिखरी कविताओं को इकट्ठी की और वासुदेव चतुर्वेदी ने उन्हें छाटने तथा एकरूप देने में मदद दी इसलिए यह पुस्तक छपकर छप सकी है।

एक स्वगस्थ युवा कवि की पुस्तक संपादित करना और उसे पाठकों से मिलाना एक स्मृति कर्म है जिसे न करना अनुदारता होती।

30 अहिंसापुरी उदयपुर —नन्द चतुर्वेदी

आत्म सबोध

मेरे अनुज शभू 'विभाकर' साहित्यिक प्रतिभा के धनी थे। जिन्होंने अनेक कविताए कहानिया एव सामयिक लेख लिखे। लेखन उनके जीवन का अभिन्न अग था। जो कुछ लिखा वह उनकी डायरियो और नोट बुक तक ही सीमित रहा। मेरे हृदय मे बहुत समय से यह इच्छा थी कि उनका काव्य सकलन प्रकाशित होकर सुधि पाठको के सम्मुख आ सके। यह मनोभावना इस प्रकाशन के साथ पूरी हो रही है।

उनका लेखन स्वात सुखाय था। अपनी मान्यताओ, धारणाओ और अपने चिन्तन के अनुसार ही वे अपने लेखन को ढालते रहे। जब सारा जग सो रहा होता तब उनका कवित्व जाग रहा होता था।

पत, प्रसाद, निराला रामेश्वर शुक्ल 'अचल एव अज्ञेय से विशेष प्रभावित हुए है। यही कारण है कि उनका प्रभाव इनकी कविताओ मे दिखाई देता है। श्री शभू 'विभाकर' का जीवन अनेक कठिनाइयो के बावजूद भी सतत सघर्षशील रहा। समाज मे व्याप्त विकारो एव अन्याय के प्रति उनके मन म पीडा थी उसकी अभिव्यक्ति उनकी कविताओ म यत्र तत्र दिखाई देती है।

शभू विभाकर का जन्म 1939 मे हुआ और प्रारम्भिक शिक्षा बूदी, लाखेरी म प्राप्त की। जीवन के अवसान के समय व राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय बून्दी मे सन् 197० म कार्यरत थे। मृत्यु के दो वर्ष पूर्व वे ब्लड-कैंसर के घातक रोग म सघर्ष करते रहे। उनका उपचार जयपुर, इन्दौर और बम्बई म हुआ। इस घातक रोग स ग्रसित रहत हुए भी उनका मनोबल बना रहा।

शभू 'विभाकर' ने राजकीय महाविद्यालय कोटा से एम ए (अर्थशास्त्र) किया एव महेश शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय जोधपुर से बी एड की परीक्षा उत्तीर्ण की। अर्थशास्त्र के व्याख्याता के रूप म विभिन्न विद्यालयो म काय किया किन्तु साहित्य के प्रति अनुराग एव झुकाव बराबर बना रहा।

यह प्रकाशन मेरे भतीजे राजेश एव भतीजी प्रतिभा (सुपुत्र सुपुत्री शभू दिवाकर) के बिना असभव था जिसने यत्र-तत्र बिखरी नष्ट प्राय होती सामग्री का खोजन का प्रयास किया उनकी डायरिया एव नोट बुक्स उपलब्ध कराने म उनकी भूमिका महत्वपूर्ण रही है।

इस काव्य सकलन का यह परिष्कृत रूप दने का श्रेय मेरे मित्र एव गुरु आदरणीय श्री नद चतुर्वेदी को है जिन्होने अत्यन्त परिश्रम से इसे सम्पादित किया। उन्होंने श्री दिवाकर क कवि कम म पैठ कर भूमिका लखन द्वारा अपना योगदान दिया। श्री वासुदेव चतुर्वेदी ने बड परिश्रम पूवक इस समस्त काय म मरा सहयोग दिया एव इस कष्ट साध्य काय को मूत रूप दन म अग्रणी भूमिका निभाई। श्री विजेन्द्र सघी, सघी प्रकाशन ने इस पुस्तक क प्रकाशन म अपने स्नेह एव सौजन्यता का परिचय दिया-हृदय उनके प्रति आभार।

ऐसा मेरा विश्वास है कि प्रस्तुत सकलन पाठका को रुचिकर लगेगा। यदि य कविताए और गीत आपको रुचिकर लग पाये तो सकलन सम्पादन की सार्थकता इसी म मानूगा।

निदेशक, राजस्थान राज्य शैक्षिक — भवरलाल शर्मा
अनुसधान एव प्रशिक्षण सस्थान उदयपुर

अनुक्रमाणिका

आकाश

सफर

सरल धूलि-काटे सखा है सदा स
डगर का सफर तो प्रणय सा विमल है ।

चरण ताड देंगे अचल राह के सब
समुन्दर सडक खुद अरे नव बनेगा,
किरन चाद की रास निशि भर करेगी
पवन प्राण म आस नूतन भरेगा ।
अगर मेघमाला घिरी भी गगन पर
मगन पाव ता भी कि आगे बढेगा ।

निपुण पाप, क्षमा करेगा प्रणय ही ।
अधर चूमने सा सपन पथ अमल है

साध्य दीप

तुलसी चौरे दीप धरा सध्या जब उतरी ।

हुए बहुत दिन
बहे वष छिन
कि तु न प्रियतम
घर को आये ।

बिखरे कुतल
घायल अचल
ढर-ढर नयना
ढर पथराय ।

कुछ याद बरसात प्राण की टूटी छतरी ।

दुखती छाती
मिली न पाती
नीद न कैसे
सपने आये ।

कजरा डसता
गजरा जलता
बाग आम्रनव
लो बौराय ।

दूज इ दु की रई गात की डाले मथरी ।

आज दुपहरी
नीम कुवारी
बोला कागा
सगुन आये ।

गोबर थापा
घर पथ नापा
चूल्हे ऊपर
चावल रोये ।

माजे बरतन तडपन गगरी हुई न सुथरी ।

मुए पवन ने
पिक की स्वन न
नय दद क
अकुर बोय ।

कब तक काटू
किसको बाटू
चिर विरही पल
पीडा धोये ।

अधर मरुस्थल प्यास दूर तक कही न बदरी ।

मनुहार

ये पावस के मास जामुनी मानस से
और प्राणप्रिय ! तुम रूठे परदेश चले ।

यह मौसम है नूतन फसल बुवाई का
यह मुहूर्त है बदरी चाह सगाई का
छक कर पी है खूब मरुस्थल प्यासे ने
यह मौका है बदरी की अँगड़ाई का
बूदी की शहनाई का ।

इन्द्रधनुष का सतरंगी गलहार पहिन
शैल चूमते तरुण छितिज ने रंग छले

यह स्वर जागा पिक की छेड़ छकाई का
आकुल पानी नदिया की तरुणाई का
लजी हवा के खनखन कंगन खनक उठे
बजा बाँसुरी रहा मोर अमराई का
छज्जे पीपल खाई का

इतरा कण-कण ज्वाल आढ़ हरियाली की
निठुर दीप पर शलभ प्राण सौ बार बले

झूमा बचपन भूला पाठ पढ़ाई का
खिला बुढ़ापा उभरा काल ढिठाई का
शोख युवापन को क्या विरहा देते हो ?
जब कि यही तो मौसम नजर जुड़ाई का
गुपचुप शोर मचाई का

खद्योतों की अगनी में ज्यों तार सजी,
खपरैलों पर रुष्ट पतंग गले मिले

जीवन सारा बीच भरे करुणाई का
मान अरे पिय टल ले शाप विदाई का
सपनों की नन्दन श्री महकी हुलस उठे
और और फिर पा ले कोप खुदाई का,
दर्शन धर्म कमाई का

तुम नयनों से दूर उधर कुछ दर हुए
इधर प्राण का सूरज मूर्च्छा अचल ढले।

विदा के क्षणो पर

मुझे पता था नही स्नेह यह क्या होता है
किन्तु आज जब माग रहे तुम विदा मौन हो
आखो म है मेघ प्राण म अमिट तपन है।
मन के खोल किवार अपरिचित देहरी ऊपर
तुमने दी आवाज दौड कर मै आया था।
कौन दिशा का पवन चला था अमर सुवासित
जो मावस म सुधासिक्त पूनम लाया था।
लजा रही थी कडी धूप म नई जुलाई
और आम्र वन छाह सलोने विहग छिपे थ
फिर अधरो पर धरी कि तुमने हास बासुरी
सुधि के गोकुल किस गोपी के पाव कपे थे।
किन्तु आज अब सुलग रही सपना की भट्टी
यह बिछुडन का शब्द घडा क्या निठुर ईश ने
लय मे लावा ऊष्ण, कठ मे तीव्र जलन है।

कौन पथ म कौन डगर मे कहा मिलोग ?
कौन नगर, गढ, कौन ग्राम अधिवास करोगे ?
कसक छोडकर जाने वाले ओ निर्मोही।
भूलोगे तुम मुझे या कि विश्वास करोगे ?
बीत चुके हैं दिवस मिलन के पुलक विमुग्धित
ये विषाद के बजे शखवर महाघोष स
यह विमुक्ति का क्षण आया है आंसू लेकर
और लुटा लो शलभ स्वय चुप दीपशिखा ?र

याद तुम्हारी इद्रधनुष सी पूज्य रहेगी
और छलेगा नित्य कि वरिन रन दहेगी
सोच-सोच कर डर का पापी चमन दफन है।

बीते फलो का प्रणाम

अगर आज वे पल पुन खिल उठे तो
निठुर मौत की आधियाँ गुनगुना दें ।

कभी तो नयनवा नयन जाम पीकर
निराली अदा से तनिक डगमगाए
कभी केश तरुवर तले दिन विताए
अधर चंद्रमा म अधर नित नहाए
कभी ये स्वरो ने कि चूने गगन पर
लचकती कमर मे उभरत उरा म
मृदुलता कि इतनी जरा मुड पडे तो
गगन खिडकिया मे धराकुछ सुना दे
न जाने अमिय या कि था वह हलाहल

लबालब नयन की भरी प्यालिया थी ।
श्रवण पथ सुगुजित नई बालियाँ थी
जिन्ह सग हवा की बजी तालियाँ थी
अपरचित जगत था अपरिचित फलाफल ।
सुपरिचित दगा व सरस देवता स
यही एक इच्छा हृदयगत तपन की
नयन स नयन की कि बतिया सुना दे
अमुखरित मयूरी भले कठ की भी

सपन पिक विचरता वसती विपिन म
गयी डूब गगरी व्यथा वे पुलिन म
जल चन्द्र न्निकर अमावस गगन म
स्पदन की दुल्हिन स्वय म सजी थी ।

मगर विष भरी क्रूर झंझा घिरी फिर
हुई कल्पना बाझपन से विभूषित
समय ने कहा व्यग सीना तना दे
कि जन्मी अगिन कौन सी आत्मदेही
फफक कर मिला मैं लिपट मरघटा से
भटक भाल फोडा सबल पटपटा से
कि लौटा विकल ही अमल पनघटा से
कि तडकी चिता पर नयन याद न ही
खडा आ हुआ वक्ष पर जड हिमालय
किसी ने शिरा हर कि बारूद भर दी
कि शोला छुआ दो स्वय को उडा द।

सघप या विपपान

होठ पर खिलती तुम्हारे जब सलज मुसकान
भीगता तन भीगता मन, भीग रहते प्रान

शोख चचल नन से जब मारत तुम बान
जिन्दगी जीना मुझे लगता तनिक आसान
वक्ष पर हिलती उभरती वेणिया छविमान
तब मचलती झील का होता मुझे है भान

गल चलते उलझ पड़ती झाड़िया नादान
बाग से लगती तुम्हारी जन्म की पहिचान
पथ च नते लचक जाती कमरिया नादान
ज्या हवा म डोलती हो फिर लता अनजान

रूप का यह सिन्धु ! छवि की खान यह रसवान
प्यार की तलवार पर शुभशील की यह म्यान
आह ! अपने दायरा का है मुझ सब ज्ञान
मैं वरू किसको प्रिय । सघप या विपपान ।

आ न सकूगा

इस होली पर आ न सकूगा प्राण वल्लभे !
रूठ न जाना अपन पागल परदेशी स ।
अपनी सखियाँ सग
उडाना घन गुलाल के
रगो की बारिश मे झूमे
श्वेत गाल के
उछल लुटाना फूल
कि कोमल अधर डाल के
रगो की महफिल मे इतना डूब न जाना
नेह निभाना भूल कि जाओ परदेशी स

है प्यार अमत की बूद
या कि विष निझर हैं
यह प्राण ! हमारे
सम्बन्धो पर निभर है
मैं सोच न सकता
हम दोना म अतर है
और लिखू क्या स्वय समझना मन की भाषा
सचमुच तुम बिन रहा न जाए परदसी स ।

आँखे

अँगारो सी दहक रही है रातो जागी आखें
बार बार ये किसे याद कर भर-भर आई आखें ।
रही ढूढती सूनेपन मे उसको जलती आखें
मुझसे जिसकी एक घडी मे लडी बडी दो आखें
बही समय की सरित, तटो पर रही रेत सी आँखे
तपी जून आकठ दिसम्बर अह् रह् पथरी आखें
चुप चुप है वातास गगन भू-लता सुमन की आँखें
उलझी साडी जहा छुडा कर समुद्र तरेरी आखें
छक छक छवि मधु धार पान कर मुदी खुमारी आखें
बीत गया वह निमिष याद कर ढरकी मोती आखे ।
किन्तु हृदय मे गडे फास सी नित्य वही दो आखें
लावा भरती ऊष्ण रक्त म लजे कमल सी आखे
और मुझे कुछ नही सूझता सिवा सिफ दो आखे
मम सलाखें छुला कहा तो आह् फोड लू आखें
अतस की आँखो से लेकिन नित्य दिखेगी आखें
रोम रोम म पुन बगावत भर भर देगी आखें
सत्य मृत्यु के बाद न पीछा छाडेगी व आखे
ज म मरण का आजे काजर वही नशीली आखे
दो एसी आशीष दवता ! खुले अवधि की आखें
हो जाए फिर चार कि भटकी-भटकी य दो आखें

फिर याद तुम्हारी आई

यह शाम तुम्हारी केश राशि आवारा सी
यह शाम तुम्हारी चितवन काजर धारा सी
यह शाम तुम्हारी परछाई मधु धारा सी
यह शाम तुम्हारे गाल उगे तिल तारा सी
यह शाम तुम्हारे गात रोम की कारा सी
गहन उदासी तन कचोटती तन्हाई
फिर याद तुम्हारी आई
यह हवा गंध में डूबे आकुल अंचल सी
खग नाद शरारत भरी चाल पग चंचल सी
ढलती धूप तुम्हारा आना लजे कमल सी
दमकी झील अधर का रखा झिलमिल सी
और मांस का बिम्ब कि बिंदिया भाल विमल सी
है क्षुब्ध धरा भी देख व्योम की निठुराई
ना याद तुम्हारी आई
मुझमें प्यास अबाधित फैले दूर क्षितिज सी
तीखी तपन जून में झुलसी मरुथल रज सी
कमकी तड़प बिजुरिया चीर उगे नीरज सी
है यह लगन पिकी की अमर गुहार गरज सी
और प्राण में पीर ज्वाल में दहके ध्वज सी
मैं हो न सकूंगा बिना तुम्हारे तरुणाई
क्या याद तुम्हारी आई।

आँखे

अँगारो सी दहक रही है रातो जागी आखे
बार बार ये किसे याद कर भर-भर आई आखे ।
रही ढूढती सूनेपन मे उसको जलती आखे
मुझसे जिसकी एक घडी म लडी बडी दो आखें
बही समय की सरित, तटो पर रही रेत सी आखें
तपी जून आकठ दिसम्बर अह रह पथरी आखे
चुप चुप है वातास गगन भू लता सुमन की आखें
उलझी साडी जहा छुडा कर समुद्र तरेरी आखें
छक छक छवि मधु धार पान कर मुदी खुमारी आखें
बीत गया वह निमिप याद कर ढरकी मासी आखे ।
किन्तु हृदय मे गडे फास सी नित्य वही दो आखे
लावा भरती ऊष्ण रक्त मे लजे कमल सी आखें
और मुझे कुछ नही सूझता सिवा सिर्फ दो आखे
मम सलाखें छुला कहा तो आह फोड लू आखें
अतस की आखो से लेकिन नित्य दिखेंगी आखें
रोम रोम मे पुन बगावत भर भर देगी आखे
सत्य मत्यु के बाद न पीछा छाडेगी य आखे
जन्म मरण का आजे काजर वही नशीनी आखे
दो एसी आशीप दवता ! खुले अवधि की आखें
हो जाए फिर चार कि भटकी भटकी य दा आखे

भूल जाना

अब न आऊंगा तुम्हारे गाँव, गोरी ।
हो सके तो मानिनी ! बस भूल जाना ।
चांदनी का था करिश्मा या कि कोई
शाप के वश हो गया था मोह विह्वल
दूरियों के खूब गहरे सागरों को पार करके
पास कैसे आ गया था ! हाय ! उस पल ।
क्या बताऊँ आग थी बस आग थी बस,
जो कि मुझको कर गई थी लील, चंचल !
किन्तु अब संघर्ष पथ से लौट पड़ना,
है नहीं मुमकिन, मुझे बस भूल जाना ।
जुल्फ के बादल नहीं हैं सत्य—केवल,
सत्य भी है भूख से दिन रात लड़ना ।
गाल तिल को चूम लेना सच न केवल
सत्य है मन की चिता में विहँस जलना ।
दर्द बेकारी, गरीबी आँसुओं से
सत्य ही है रूपसी ! नित युद्ध करना ।
है तुम्हें प्यारे अमिय के शुभ्र प्याले
है मुझे प्रियतम हलाहल भूल जाना ।
जुल्म के पाखंड के ऊँचे महल को,
तुम सुनोगी एक दिन, मैंने गिराया ।
अस्त करना है मुझे उन को जिन्होंने
विश्व भर में झूठ का डंका बजाया
चौंक उठोगी सलोनी ! जब सुनोगी—
एक बिरही कवि वतन के काम आया ।
याद-सर की, ओ कमलिनि ! भूल जाना,
रूप नभ की चंद्रिके ! बस भूल जाना ।

गीत

एक अर्से से हमारी आख या मिलती रही है
किन्तु अधरो पर कटीले शील की चट्टान दढ है
नील अलको की नशीली घाटिया स मन सुलाया
विरल वसनो की वसन्ती सुरभियो मे मन लुभाया
कल्पना के कुज म छिप छिप मिला हूँ नित्य ही मैं
पर कभी दो बोल बोलो तुम मुझे ! वह क्षण न आया
यदि पुजारी ने स्वय की भेंट भी दी अचना म
देव क्या वरदान द जो, रे स्वय ही मूक जड है
स्वग की शुचि कामना सा ली तुम्हारे दरस पाकर
अश्रु विहस प्राण शर म स्निग्ध तप दग परस पाकर
रूप का खग चेतना को चोच म ले मग्न व ठा
स्नेह लतिका गुनगुनाई राम मन म हुलस छाकर
उग्र लहरो के भयकर ज्वार मे डूबा तिरा म
पर अतल को चूमने स रोकती वह क्या पकड है ?
आह ! औरो स प्रमुद हँस इस तरह बाल कि तुम प्रिय
किरण मुख म निज अधर द जिस तरह वाले कुसुम प्रिय ।
चद्रिका तुम ओ ! हजारा याजनो तक बिखर छिटकी ।
मैं वहिष्कृत वह कुआ हूँ दूर तक जिसम कि तम प्रिय
मन सुपरिचित दग सुपरिचित किन्तु तनवा है अपरिचित ।
इन्द्र धनु वह लहरिया जिसमे मचलती बन अकड है
चार दिन हैं शेष फिर तो यह नयन व्यापार भी प्रिय
झर पडेगा और तरा मदभरा शृगार भी प्रिय
भूल फिर मुझको न जाने कौन मग म तुम बढोगी ।
धूल हँस देगी चरण पर मरण पर अगार भी प्रिय
जिन्दगी का रूप का त्योहार समझो ना कुमारी
यह भटकती इक लहर तिरती कभी खाती रगड है ।

गीत

सौ सौ जनम प्रतीक्षा कर लूँ
प्रिय मिलने का वचन भरो तो

पलकों पलकों शूल बुहारूँ
असुवन सींचूं सौरभ गलियाँ
भवरो पर पहरे बिठला दू
कहीं न जूठी कर दे कलियाँ

फूट पड़े पतझर से लाली
तुम अरुणाये चरण धरो तो

लट बिखराये जोग रमाये
प्रीत कुमारी तुम्हे बुलाये
बरल पीडा तुम बिन मन म
बिना धुएँ का हवन कराये

सास सास फिर रास रचा ले
बन घनश्याम उमड बिखरो तो

रात न मेरी दूध नहाई
प्रात न मेरा फूलो वाला
तार तार हो गया निर्मोही
सध्या का रगीन दुशाला

जीवन सिंदूरी हो जाय
तुम चितवन की किरण करो तो।

सूरज को अधरों पर भर लूँ
काजल पर डालूँ अँधियारी
युग युग के पल छिन गिन गिन कर
बाट निहारूँ प्राण तुम्हारी

सासों को जंजीर बना लूँ
तुम प्राणों का वरण करो तो।

साँझ और तुम

कुतलो की नील निधिया को समेटे
क्या स्वय तुम साध बन कर छा गई।

श्वत, श्यामल अरुण नीलम बादला न
व्योम आगन म रची नवचित्र शाला
क्षितिज के उस पार दिन का भानु साधु
जा रहा है ओढे गरिक सा दुशाला
नीम पीपल खेजड की ममराहट
थम रही ओ ढुल रहा नव राग प्याला

शुभ्र विहसन को बिखेरे भूमि नभ म
क्या स्वय तुम चादनी बन आ गई।

और हसमुख तारको की कोटि आँखें
ढूढती है किस अपरिचित बालिका को
भग्न उर की क्षीण आतुर क्षुब्ध लहरें
टेरती है किस हृदय की बालिका को
और थपकी दे सुला कर निखिल जग को
दे रहा है वायु न्रण किस मालिका को

सुरभि आचल की लिय चिर शात निरूपम
क्यो स्वय तुम परिमलो मे छा गई।
बोल मरे प्राण कब तक मरण-पीडा
का निठुर उपहार मैं सहता रहूँगा
बोल मन के ध्यान कब तक मैं अकेला,
यू सिसक कर की दहगा

वक्ष कुजो मे निराला दद-अकुर
उगा, शायद तुम स्वय ही आ गई !

किंतु मानी प्राण ! लगता है मुझे या
रात, प्रात , वात, घातो म तुम्ही हो
दद तेरा, आह की यह गद तरी
नदी, निझर, उदधि साता मे तुम्हो हो
तडप मरी दह नटखट बोल उठती—
आह, क्या तुम रोम, प्राणा म नही हो ?

लाघ कर तन-दूरिया, मजबूरिया—सब,
क्या स्वय तुम आज मन तक आ गई !

यह कैसे कहूँ मैं

क्यों न आया हू तुम्हारे पास यह कैसा कहू मैं।
गमक उठा यह हृदय का बाग पाकर तव निमन्त्रण,
लौट आए ज्यो अचानक उम्र के रगीन मधु क्षण,
प्यास—आकुल दाह मेरी बन गयी थी स्निग्ध चन्दन।
नैन म था मेघ का आभास, यह कैसे कहूँ मैं।

श्वास के वातास म सपन उडे थे सित सुनहले,
औ' प्रणय आराधना से प्यार जागा मन्द हौले,
याद आई उस कली की जो खिली थी वष पहले।
धडकन करने लगी थी रास यह कैसे कहूँ मैं।

किन्तु सहसा आँधियो के देश की पुरवा बही वह
पाँव मुरदा हो गये औ सपन घर म भी गये बह
इस तरह सब हौसले डूबे न जाने किस अतल मे।
राह मे मुस्का रहा था नाश, यह कैसे कहूँ मैं।

हृदय काँपा प्राण रोये हो रहा हर रोम म रव,
आग तन मे आग मन म, जल रहा हर ओर स भव,
फडफडाया व्योम तडपा चाद धरती बन गयी शव।
तिमिर का फिर हो गया मैं दास, यह कैसे कहूँ मैं।
क्यो न आया हूँ तुम्हारे पास, यह कैसे कहूँ मैं।

बोल मन की रागिनी

बोल मन की रागिनी तू बोल,
गान में शत भेद मन के खोल !

नमित नीलम आंख में सावन लिए हूँ,
विगत सुख की याद का ईंधन लिए हूँ
वेदना का प्राण में पाहुन लिए हूँ !

कौन सपना का सरस धुन बोल
राह को या कर रहा है लोल !

बादलों के गाल पर ठिठकी नमी है,
जाग सारी रात यह, रोयी जमी है
सरित मन की वेदना कब रे थमी है !

कौन पीडा ले सकेगा मोल ?
पात पतझर में सके कब डोल ?

आगमन की आस में दिल को दहा है,
गरल पी कर द्वेष काटों का सहा है
विवश मैं अनजान मम मंजिल कहा है !

दग्ध जीवन में सके कब घोल—
हार का आभास ही अनमोल !

मगर प्राण ! आये न तुम !

व्योम के मध्य म मघ भी नव घुमड,
घरघराये मगर प्राण ! आय न तुम !

मेघ रिमझिम बरस कर किसी खेत म,
मूक हरता धरा की जलन बावरी,
एक मर मगर प्राण के खत म,
प्यास रोती सिसक चुप पडी बासुरी,
नन के अश्रु भी मघ स होड कर,
दीन ढुलते सिहर कँद हे माधुरी !

ओढ कर गात पर रेशमी ओढनी
भूमि इठला रही—प्राण ! आय न तुम !

ओ निठुर मीत मेरे ! तुम्हारे बिना
याद का दीप यह रोशनी हीन है !
निझरो म, सरो म सलिल झूलता
तडफडाय मचल नैन के मीन है !
इन्द्र धनुषी वसन ओढकर नव दिशा
श्वास की बीन यह दीन है क्षीण है !

विद्युतो के दिये स विभूषित गगन,
भूमि नवयौवना—प्राण ! आये न तुम !

दूर तक सज रहे राह के केश मे
अजनबी वश म वायु गतिमान है !
बूद की थाप पर प्रीत क दश का
ढोल भरमा बजा मेघ छविमान है !
किन्तु मेरे नयन म कि जीवन नही
मांस के शव बिमल गात शमशान है

भोर भी सौझ भी दिवस औ' यामिनी
मैं कि रो रो थका प्राण ! आये न तुम !

प्राण ! न आना पास

प्राण ! न आना पास, पवन बन मैं ही द्वार चला आऊँगा !

ऊषा के मोहन तीरों से तन की खोल शृंखला झनझन,
मन की डाल बैठकर कोकिल बिखरा दे भू पर नवयौवन,
शबनम को माधुर्य दान दे गगन हरे जब जग की कसकन—
विकल न होना और नैन के जगा न लेना नीर भर घन !

प्राण ! न खोना आस सपन बन मैं ही पार चला आऊँगा !
प्राण ! न आना पास, पवन बन मैं ही द्वार चला आऊँगा !

धीरज की सुनसान राह से बुला न लेना याद-बटोही
चुभन चिता की अगवानी में भेज न देना उर निर्मोही
भ्रमरी के मधु अधर परस पा खिले शरम जब कली बिछोही—
तुम न करुण उछ्वास छोड़ना ओ मेरे प्रिय, मीत, सनेही !

प्राण ! न खोना हास, बयन बन पिक का तार चुरा लाऊँगा !
प्राण ! न आना पास, पवन बन मैं ही द्वार चला आऊँगा !

दिवसों के छलिया सता को मोती की मधु भीख न देना,
रातों की पगली बिजुरी से जलना-बुझना सीख न लेना
व्यंगों की निर्मम आँधी में तट तक तुम नैया मत खेना,
तिल तिल जल कर शरद व्योम से माँग नखत की अगिन न लेना !

प्राण ! न पूजो नाश, तपन बन छल-संसार जला आऊँगा !
प्राण ! न आना पास, पवन बन मैं ही द्वार चला आऊँगा !

किन्नरी मधु रितु और आत्म पीडन

उपवन अतीत लहराता
यादो के सुमन विहसते
उन पुन्य मिलन घडियो मे
लज्जा के दीपक जलते

मन प्रणय सिंधु घहराता
भावो की नौका तिरती
वे दुख की कडी कगारे
करती विलाप जा धसती

उन सौरभ मय रातो मे
हिमकर का दीया जलता
जड शलभ बने तारा का
जलता मन हिया पिघलाता

जब मलय लहर आती थी
वासन्ती घूघट खोले
मुकुलित हो मेरा कोकिल
दो गीत प्रणय के बोले

म तारक दल दिगमण्डल
गाते थे गीत नशीले
तब श्वास किन्नरी स्वर
कहती थी थाहा पी ले

तारो का नेह टपकता
भावो के छन्द विहसते

मुख इन्दु बिन्दु मे घायल
मधु रितु के स्वर जा बसते

सब डूबे वे पल सुखकर
हो गया कंद मेरा शशि

किस गहन विरह सागर मे
किस कुटिल अघ गागर म

फिर सावन घिरा है

मानता हूँ आज फिर सावन घिरा है
नन मे झिलमिल वही सपना तिरा है
किन्तु अब मैं पयटक छवि का नही हूँ
भूख से तूफान से लडता दिया हूँ

कल्पना का बाग अब बीमार है
हार से झुलसा हृदय सुकुमार है
जुल्मता से युद्धरत मैं वह सिपाही हूँ
रूप का भाता नही व्यापार है
पाप के मुख पर पुती मैं पुण्य स्याही हूँ

मानता हूँ आज फिर बिजुरी कडकती
बूद तेरी याद के पन्ने उलटती
किन्तु अब मधुप का खाता वही हूँ
वायु से उडता सिहरता आशियां हूँ

भावना के हाथ म अब आग है
आपदा के नित्य डसते नाग है
झूठ था वह पिकनिका म झूमना
सत्य पथ है मील है फर्लांग है
प्राण भर ख्याल को मत बाचना

मानता हूँ आज फिर झरने युवा हैं
काटता पर आज गम का केचुवा है
दूध सी उन्मोद था सहता दही हू
बेसहारा एक जीवित ममिया हू

धुंध हूँ पर भोर वाली धुँध हूँ
आज भरकर कल उगूगा, चांद हूँ
हँस लुटूंगा मैं अभावों का शलभ हूँ
पर शमा की नक्ति हू आनन्द हूँ
दाह दीपित मैं अखंडित आह नभ हूँ

मानता हू आज फिर पुलकी धरा है
लात ठोकर किन्तु मेरी अप्सरा है
कामना की हूँ इमारत जो ढही हू
गात तो निर्जीव पर स्पंदित हिया हू

कौन वह

सांस सांस म बसी सलोनी कौन नगरिया लूटल रे।

आंखो म छल छल जल कन है
अधरा म आकुल तडपन है
सपना का रोया, दपन है
भावा का अन्तर अपन है
गीतों मोतो का बिछुडन है
यौवन रस स भीनी भानी कौन कमरिया टूटल रे
साम साग म बसी सलोनी कौन नगरिया लूटल रे

ये उजले दिन काली रातें
ये भू के कुसुमा की पांत
ये सध्या लो छिपी प्रभाते
समय विहग मुड उड उड जाते
मान मिलन पल हाथ न आत
निरमल निशा प्रतीक्षा बाझिल कहा सवरिया सूतल र
सास सांस

जनम हुआ जब विरह हुआ है
आयु भर निश्वास हुआ है
पीडित मरा रुआ कुआ है
जीवन क्या है घना धुआ है
अश्रु हास मय एक जुआं है
मैं तुमस मिलने को आकुल पख उमरिया टूटल रे
सांस सास

जीवन यह केवल सपना है
चिर विरहाकुल तप तपना है

मुसकानें आंसू जपना है
पीड़ा को बरवस थपना है
ना जग मे कोई अपना है
पीड़ित है सब मीत स्वजन गन गांव-नगरिया घूटल रे
सांस सांस

मैं चलता था धीरे धीरे
निझरणी के तीरे तीरे
अन्ध अमा को चीरे चीरे
कहती आशा जी रे ! जी रे !
प्यास लगी तो पानी पी र
मैंने बढ पीना चाहा तो हाय लहरिया रूसल रे
सांस सांस

पानी म नलिनी कुम्हलानी
शफरी जल मे प्यासी जानी
पवन चले पर श्वास रुकानी
महा मिलन क्यो मरना जानी
सत्य न पाये बड बुध ज्ञानी।
मैंने जब आवरण हटाया प्राण पखुरिया टूटल रे
सांस सास

धरती

प्रण

लाख विहसा तिमिर की शाहजादियां मेरे चरण पर
दखना मंजिल अकेले भोर पहले टोक लूंगा ।

है बिछी नव सेज पत्थर भूल की बीहड डगर में
मानता हू प्राण का हर दोस्त मेरा संग साथी
धूलि घाटों पर नहाती आंधियों की बालिकाए
निवसन उन्मुक्त कामुक हैं पड़ी निज खोल छाती ।
वृक्ष के चल कुन्तलों को गूंथता है पवन पापी,
और गर्जन तीर से गदन उडाए चाद-बाती ।

लाख दौडे थकन की बिजली कि मेरी धमनियो मे,
पाव लख कर पाव गर मेरे रुके तो ढाक दूगा ।

मेघवा ! तू खूब इठला कर बरस जा आज निशिभर
झाडियों ! तुम आज जी भर छांह में शत सांप भर लो ।
जुगनुओ ! तुम दूर वन मे जा मनाओ रे दिवाली,
ओ झरे अगार ! सुलगो भूमि नभ को एक कर लो
नील अम्बर ! ओस-कण को विष भरे तू यम बना दे,
मरुथलो ! तुम भी न सोचो हरितिमा का आज घर लो ।

किन्तु बागी पाव के निश्छल सिपाही तू चला चल
शपथ रवि की मैं जगत की तोड जालिम जोर लूंगा ।

ओ प्रिया की मांग ! निज सिंदूर निशिभर पोंछ रखना
कल सुबह ही भाल पर चिरसुबनी सिन्दूर दूंगा
चूडियों की खनक ! निशिभर तडपना पर मौन रहना
लौटते ही रव मधुर भुज बंधनों भरपूर दूंगा
आज तो संघर्ष सागर के भंवर में मौन हूंगा मैं
मैं उषा से पूर्व साहिल पर अरुण रथ मूर्त दूंगा

साहसी मदिरा पिए ये पैर यों बढ़ते रहे तो
आस गजगामी कुमारी विजय छिन में मोह लूँगा

पार्थ सम मैं किस कदर भी पटु धनुर्धारी नहीं हूँ
भीष्म हूँ तम के शरों की रात सारी झेल लूँगा ।
शीश पुलके, उस मधुर मधुमास की सौगंध मुझको
रक्त मेरा उष्ण तो पतझार को खुद ठेल दूँगा ।
ओ शराबी कोपलो ! मत पथ में तुम नयन फेरो
मैं नया ज्वालामुखी जग को अमर रस धार दूँगा ।

भूख बाधित हो न मग में चाँद तन विक्रय करो अब
रात से लड़ लूँ, सुबह गजरे सुहागी बाँध दूँगा ।

श्रम की सदा विजय होगी

श्रम की सदा विजय होगी।
शूला के तीखे डका मे,
आँधी के निमम पखो मे,
गजन के भीषण शखो मे,
मन की आस न क्षय होगी !

पथ शत विघ्न मय लिपटे,
पर न कही भी पग सिमटे
मिलें सदा विष की लपटें,
तम मे सास न लय होगी।

भू-नभ गूजेगा बार-बार
मानव की जय का महोच्चार,
खेतो मे झूमे विमल ज्वार,
श्रम की सदा विजय होगी !
श्रम की सदा विजय होगी !

एक निराशा, एक आशा

आंसू भीगा हर एक दिवस ।

आहो के उडत मेघ विकट,
झरझर झरते हर हर विटप
चीखो स भाग गया सब पट
मानव दुबल औ दीन विवश

मक्की क मेले म बयार
लडखडा रही श्लथ हार-हार,
द्वन्दो का जीवन दुर्निवार,
यौवन पूजी स कद, विवश ।

पर नई भोर की किरन नवल,
बोएगी श्रम क बीज मदुल
सघर्षी होगी स्मिति पल पल
गूजेगी मानव जय ध्वनि हँस ।

शत श्रम के दीप जलाओ हे !

वहका वहका है पवन आज,
दहका दहका है सपन साज,
धरती को तुम हा वसन लाज
शत श्रम के दीप जलाओ हे !

गौरव-गरिमा सब छिन्न भिन्न
मन आलस प्रिय, कर्तव्य खिन्न
सर स्नेह विनय के शुष्क, क्षीण
नित तम मे चरण बढाओ हे !

कफनो से आवृत शुभ्र प्रात,
हड्डी मे तडपा मनुज गात,
पौरुष की गगा कीच स्नात,
पथ के भ्रम-बाध ढहाओ हे !

मानव से मानव करे प्रेम,
श्रम-आलोकित हो नियम-नेम,
नित बढे मनुज मे प्रीति क्षेम
मधु स्नेह—अनागत व्याहो हे !

अभाव का आलोक

आ तू
याद बन
मेरे बिखरे बालों में
अँगुलियाँ मत फेर
लाल पीले कनेर
और झाड़ियों के बेर
—भी—
कभी
मेरी एकान्तिकता के भागीदार बने
अलम है।
दूर का अशोक
कलम की गतिशील नोक
पास रहे
अभाव का आलोक
—क्या कम है।

नई ज्योति का गीत

श्लथ जन की चिर प्यास हरो हे !
हर मन म उल्लास भरो हे !

निर्माणो के देवालय मे
यौवनमय नव ज्योति जगा दो !
सदिया से धरती की दुल्हन
विधवा है, फिर माँग रचा दो !

हँस हँस के दुख शोक हरो हे !
दीपक बन आलोक भरो हे !

पीडाओ की अमा निशा है,
पग पग साहस दीप जले फिर !
पतन तपन की प्रखर लहर मे
सपनो को दृढ नाव मिले फिर !

प्रलय निशा को भोर करो हे !
दग्ध दिशा श्रम रोर भरो हे !

चरण बढ़ा दो और बढ चलो
जीवन मे सग्राम अमर है !
दीन नियति की यति को गति दो,
स्वेद रक्त का धाम अमर है !

पूत राष्ट्र की चुभन हरो हे !
मग मग म सत दीप धरो हे !

शत शत स्वागत पुन्य दिवस हे !

स्वग चरण से तोड तिमिर हृद मण्डल
प्रखर प्रभा के अमर पुन अय मगल
द्रोह वाहिनी शक्ति हरो उच्छृखल !
भ मानस के प्राण कलश हे !

भाव-हस के मुक्त परो पर शोभन
बैठ भारती उर मे उतरो मोहन
आलोकित मग, सजनमयी हो शोधन,
जीवन क चैतय निमिष हे !

लोक भूमि पर आजादी की गीता
मुखरित हर अधरो स हो नित्य पुनीता
वाणी शिव सुदर सत्य प्रणीत प्रसूता।
उतरो भ पर नेह विवश हे !

गणराज्य से

ओ शिवमय गणराज्य तुम्हारी जय हो!

लोकभारती के मन्दिर मे
बजती रजत विहग घटिया!
कम-सूय, अभिनव प्रकाश से
आलोकित जन भाव घाटियाँ!

भव, आँगन मे पचशील के
गौरव मय पौधे के नीचे,
स्नेह हास की शत नहरो स
जन मन का कन कन सीचे।
लोक राज्य मे कही न भय सशय हो।

जीवन के मधुरिल मानस म
विश्वासा क कमन खिले फिर!
राग-द्वेष से रहित हृदय को
सबल के कर हम मिले फिर!
निर्माणा के महा ज्वार म
तन्द्रिल लाक चेतना जाग!
उत्साहो की अरुण उषा मे
स्वप्निल स्वग रचाना त्याग।
लोकादय की निभय सदा विजय हो!

नयना मे पथ भावी का रथ
जाग्रति घोष सुनाता, आये।
शक्ति, ज्ञान, साहस विवक की
सत्य-कतुएँ फिर फहरावे।

अंध अमा का चीर चीरता
फिर से प्रभा लोक आ उतरे ।
बापू, ठाकुर और विनोबा के
सपने सच्चे बन बिखरे
लोक भूमि से दूर विनाश, विषय हो ।

दीपोत्सव की आग

मानव की मानस कुटिया मे, नयनो की सूनी बगिया म
सपनो की रोगी दुनिया म, कितना घुप्प अधेरा साथी !
दीपा शिखाआ के उत्सव का हप मुझे नक्ली लगता है

मैंने बोया स्वेद, फसल काँटो की पाई
तितलीपाखी देह समपण मे झुलमाई
कतव्या के लाक्षागृह मे हँसत हँसते
विमल जवानी तपते जलते राख बनाई
आँसू की जलधार चढा कर, पीडा का चदन लेपन कर
चीत्का के पवि शख बजा कर पाया दद घनेरा साथी !
दीपमालिका के बन ठन का रग मुझे जगली लगता है

नीति धम ने मेरे पथ म विपधर फेंके
बिजुरी, उल्का, शलभ ज्वाल स मैंन देखे
लेकर मन उद्विग्न आग को पान किया है
और किए हैं पार समुन्दर गरल-अनय के
प्राणो की बाती कर जाला, सासो का नहा जल ढाला
किरन न फूटी, हटा न जाला पूजी एक लुटेरा साथी !
लक्ष्मी स्वागत हित गूजे वह राग मुझे डफली लगता है

कब होगा उजियारा, सूरज कब चमकेगा ?
श्रमजीवी इन्सान देश का मुकुट बनेगा
आओ मिलकर बन जाएँ हम सडक साथियो
जिस पर हो आरुढ क्रान्ति का रथ गुजरेगा
मानव के उत्सग-त्याग मे, प्रखर पसीने के पराग मे
शक्ति वफ मे नही, आग म, ज्योतो सुख सबेरा, साथी
बिन बदले यह जगत मुझे तो मरी हुई मछली लगता है

जागता चल देश मेरे

साधना का दीप लेकर आंधियो मे
युग युगो तक जागता चल देश मेरे।

जनमते ही आह तूने फूट विघटन द्वन्द्व देखा
क्षीण जिससे हो न पायी कर्म की पर भाग्य रेखा।
और फिर कठिनाइयो का मेघ आया घन घहराता।
नेह की दुनिया वही है रह गई बस दग्ध सिकता!

रश्मियो से प्रेम की तू सष्टियाँ कर
छल तिमिर को चीर धीर दिनेश मेरे।

सजग हो कर फूक दे, अब पचशीली शख कोमल
युद्ध की हुँकार बबर हो रहे फिर आज धूमिल।
एशिया की वादिया मे गूजती मधु मुक्तियाँ हैं
शाति सह अस्तित्व मे जग ढूढता सुख-युक्तियाँ हैं

चेतना की नाव लेकर लहरिया मे
तैरता चल वीर भरत निवश मरे।

गीत

हाथ म मशाल ले जोश का उबाल ले
तिमिर के कपाल को फाडते चलो।

और सिफ तू नही, साथ मे सितारे हैं
पवन मे पले मदिर जीत के नगारे हैं।
दद सेंकती हुई वृक्ष की कतारें हैं
सपना मे सिली नयी शबनमी बहारें हैं।

प्रीत की पुकार पर गीत के खुमार पर
दद की मजार को तोडते चलो।

जिन्दगी तो राख मे आग का उफान है
पावसी घटाओ मे बाढ की थकान है
जिधर आदमी बढा, कढा नया विहान है
मनचली निगाह म हर घडी जवान है।

मोह के विकास को, भौंह के तराश को
प्रगति के हुलाश मे मरोडते चलो

पुकार

मैं न धरा को आसू ढरत देख सकूगा
स्वस्थ भुजा से हल तुम हाका बैल मुझे दो।

अब न ज्वार को हथकडिया मे बाध सकोगे
अब न सत्य दीवार तनिक भी लाँघ सकोगे,
अब न गाव के पनघट विष का कलश हँसेगा
अब न कृषक की स्वप्न साधना बाक सकोगे।

अब न उम्र को विधवा होते देख सकूगा
फसलो म पानी तुम मोडो चरस मुझे दो।

अब न रक्त का सौदा या नीलामी होगी
अब न तिजोरी तिल गेहूँ की रानी होगी,
अब न अकाली छाया भू पर कदम धरेगी
साम तो का चौपड अब न जवानी होगी

मैं न खेत को नगे होत देख सकूगा
हर गलियारे छाँह उगा दो, धूप मुझे दो।

मै न धर्म का दास हूँ

मैं न धर्म का, परम्परा का दास हूँ
कर्मशील मैं अपना खुद इतिहास हूँ।
जो नई भोर का स्वप्न रचाए लोचन में
नित कड़ी धूप में बैठ तोडती है गिट्टी।
जो बाँध, बाध कर मस्त नदी की छाती पर
नव नहर बनाने हेतु खोदती है मिट्टी।
जो छाछ बिलोती और थेपती है छान
जा देती मधुरिम अन्न जलाकर मन भट्टी।
उन्ही देवियो की आहत मैं श्वास हूँ
श्रम के गिरि का गौरवमय कैलास हूँ।
जो पीत तितलिया पकड़ झूमते बागो मे
जो सरिता तट पर रेत निकेत बनाते हैं
जो पावस रितु के बहुत गदले पानी मे
खिल नई लगन से कागज नाव चलाते है
जो युवक पिता के सग जागते खेता म
हठधर्मी कर हल और चरस हँकाते है
उन्ही बालको की मैं कोमल आस हूँ।
नव भविष्य का रूपक हूँ, अनुप्रास हूँ
जो आकाशो मे झरी चिलम का धुआँ उडा
जो थकी उमर की विगत बात बतियाते हैं
जो निर्मल निर्झर श्वेत कपासी केशो से
पगडिया हटा ठाकुर द्वारे झुक जाते है
जो जर्जर तन पर भार उठा अभिशापो का
दृढ सघर्षों की चक्की मे पिस जाते हैं।
उन्ही वृद्ध मनुजो का मैं विश्वास हूँ
मर मर कर जो जिए वही मैं लाश हूँ।

प्रजातत्र की वर्षगाठ पर

प्रजातत्र की वष गाठ पर वल्य जलान वालो
तीस जनवरी राजघाट पर अश्र बहान वालो
कभी मूख स बातें भी की होती ?

जनमन की चेतन सीता को
बहकाया क्या दिखा स्वण मग
आदर्शों के सरल शलभ को
दहकाया क्या दिखा दीप दग ?
प्रजातन्त्र के पुण्य दिवस पर ध्वजा उडाने वालो।
राजघाट पर झूठी कलिया फूल चढान वालों।
कभी रक्त की आहुति भी दी होती ?

जाग उठा है अबकि आदमी
छल की नित्य पराजय होगी।
पूव अरुण है नई उषा स
सच की जीत शीघ्र ही होगी।
प्रजातन्त्र के पुण्य दिवस पर गैल सजाने वाला
पुण्य तिथी पर छल स भारी शीश झुकाने वाला
कभी राष्ट्र की पूजन भी की होती ?

विकास का एक निवेदन

अब न रोके से रुकूंगा अग्नि ध्वज हूँ
झूठ को मैं ध्वस्त करके ही रहूँगा
मत मुझे दपण दिखाओ बाल रवि हूँ
रात को मैं अस्त करके ही रहूँगा
पथ मे बाधो न पग को, यन्त्र रथ हूँ
लक्ष्य के सौ कोस चलकर ही रहूँगा

द्वप ईर्ष्या से भरी आलोचना से
आत्म बल का अश्व क्या गतिहीन होगा
औ प्रशसा के स्वनिर्मित काव्य-रव से
चेतना का बल क्या मति हीन होगा
जब हँसेगी हर अधर सतोप किरनें
देव दशन सा मुझे तन हृप होगा

यत्न मेरा यह रहेगा प्राण प्रण से
खेत की राधा न अपने अश्रु बोए
बालिया खुलकर हँसे निशिदिन हवा म
गाँव की चौपाल सुख की बाट जोए
आँख मे थिरके सुहाने स्वप्न नूतन
दुर्दिनो का भार ना कटि पीठ ढोए

मैं रहूँ हरदम नये युग का चितेरा
पीठ मत ठोको, मगर कुछ प्यार दो
बाढ मे भूकम्प मे, जल प्लावनो म
नित बढू मैं धडकनो का हार दो
मैं सँवारूँ राष्ट्र को शुभ स्वग मा
एक यह विश्वास दो, आधार दो

ज्योति का उत्सव मनाना व्यर्थ है

जब तनक है शेप जग म भूख का —
जड अमावस सा वनयमय तम सघन
ज्योति का उत्सव मनाना व्यथ है।

यू कि सदियो स मनाते दीप दिन
किन्तु तन के साप को डमना कठिन
एव नकली रावणी गढ जीत कर
बन रहे हम खुद निशाचर दिन ब दिन।

शेप है जब तक धरा पर जजरित
बिल बिलाते कीट दल स दीन जन
स्वण प्रभु की अचना सब व्यथ है।

निधनो की रीढ पर मदिर बना,
लक्ष्मी के चित्र को झुक पूजना
ध्यान पूजा तप-तपस्या साधना
व्यथ है जब तक दलित जन अनमना।

जबकि सीमा पर खडा दुश्मन दनुज
लपलपाता विप भरी निज जीभ को
दीप द्वारे हर सँजोना व्यथ है।

हो सके तो पास ला दो भू-गगन
चीर फाडो धन विपमता का वसन
स्वण चादी, रक्त भेटो राष्ट्र को
युद्ध के हित बाँध लो सिर पे कफन।

मौत के घाटो उतारा भ्रष्ट जन
सत्य के बढ कर पखारा पवि चरन
ज्योति का उत्सव नही फिर व्यथ है।

कौन शत्रु

शत्रु केवल सरहदो के पार ही जीवित नही हैं,
भूख, बेकारी, गरीबी शत्रु ही थे, शत्रु ही हैं।

जब वधू के वस्त्र औ कर चूडियो से
सब भक्षी कर्ज भी चुकता नही है,
जब शिशिर की रात, आसू-औषधी से
पुत्र का जड-ज्वर कभी थमता नही है,
दीर्घ-वय की कामना से, जब भजन से,
रुग्ण मा का घाव भी पुरता नही है
बोल री धरती ! निठुरतम आसमा का
बूद इक आसू कही ढरता नही है।
युद्ध केवल सरहदो के पार ही सभव नही है,
भूख से लडना सदा से युद्ध ही था, युद्ध ही है।

आदतो को अब बदलना ही पडेगा—
'सेफ' मे बैठी कि लक्ष्मी ! आज सुन लो।
आग मे चलता श्रमिक अथवा कि धन-पति,
इस सदी की माग ! सोचो और चुन लो।
अब न आयेगा जमाना लूटने का,
भूमि पतियो ! मत सगुन लो मत सगुन लो।
फूटने को है सुबह की वरद किरने
पापिनी मावस ! कि अपना शीश धुन लो।
रक्त-अर्पण ही नही है राष्ट्र का पवि पुण्य पूजन,
स्वेद का अर्पण सदा से भक्तिमय है, भक्तियुत है।

स्वर्ग से अनुपम बनाना है मरुस्थल
औ, भिलाई से नए तीरथ सिरजना
भवन महलो को परसना कुटी पग है,

धूलि कण को फिर हिमालय पर पहुचना।
आदमी का धर्म है शाश्वत मनुजता,
मात भू हित जूझ मरना श्रेष्ठ मरना।
एशिया के मुकुट भारत के जनो हे !
साम जब तक ! डगर पर है मुक्त चलना।
शत्रु को रण म कुचलना ध्येय अन्तिम
देश का खुशहाल रखना लक्ष्य ही है।

दीपोत्सव

दूर तक अविराम गहरा है अँधेरा
सत्य को छल कालिमा ने आन घेरा है
ज्योति के घर पर गिरा कर बम विषैला
कर लिया है कैद पूजी ने उजेरा है
बेवजह हर ठौर पर नवदीप के सपन
हाय ! खुद की लाश कधो पर उठाते हैं
और शहजादे तिमिर के बैठ तूफा रथ
इस खुशी मे झूम दीवाली मनाते हैं
यत्न के पौधे, सुजाता साहसी कोपल-
रक्त की आशिक फिजाएँ चाट जाती हैं
शोषणी मदिरा पिए सैलाब का नतन—
चादनी को ये अदाए रास आती हैं
क्या अजब है खेल ! जो बीमार घायल है
राह चलती भीड ठोकर कस, लगाती है
स्वाथ की लका परम द्युतिमान रखने हित
आदमी को आदमी की मौत भाती है
झूठ-द्वारे माज बतन पाप के झूठे
षोडशी ईमान की बेटी, बिलखती है
होटलो भ्रष्टता का, कितु कथाए—
चाय मित्रो सग 'चा चा चा' कि करती है
घोषणाएँ प्राथनाएँ, मसविदा, भाषण—
पत्र की बिक्री बढाने मे सहायक भर
गिर रही क्रयशक्ति के सम्मुख अभागा नर
बन गया चित्ताड के दढ दुग का पत्थर
मुटिठयो म स्वप्न, आँखो म अमित जल भर
मैं अकेला, क्यो मनाऊँ आज दीपोत्सव ?
आज जब अधिकाश की हस्ती नही इतनी—
झोपडी म दीप का जो हो सके सदभव

भूमिका

अब अगर विद्रोह की ज्वाला कहीं फूटे
अब कहीं जो सूर्य की आभा तिमिर लूटे
आसमा के देव ! भू के रहबरो ! सुन लो
भूख म उत्पीडितो को दोष मत देना
भूमिका जनक्रांति की तुमने स्वय रच ली

फूल अधरो से कि किसने अरुणिमा हर ली ?
छीन कर किसने बहारें सेफ मे धर ली ?
क्यो बुढापा खीच रिक्शा ढो रहा दुखडा ?
गृह वधू का गात क्यो है नग्न बिन कपडा ?
रोग महगाई, गरीबी, भूख से जजर—
हड्डियो का पुज ही क्या राष्ट्र का सहचर ?

अब अगर जो हडियो म ज्वार उफनाया
अब ममूचे रक्त मे भकम्प गर आया
इस जगत के ईश ! ऊपर के खुदा सुन ले
जुल्म की तलवार का मत आसरा लेना
भूमिका जनक्रान्ति की तुमने स्वय रच ली।

भारतीय जनता के नाम हिन्दी की पाती

भारत की जन-शक्ति ! विश्व के शान्ति-दीप की बाती ।
प्रथम नमन ले मेरा, फिर तू सुन यह भीगी पाती ।

वैसे तो मैं नहीं चाहती पाती तुम्हें पठाऊँ
इस संकट की घड़ी तुम्हारा हृदय कहीं भटकाऊँ ।
किन्तु अभी संसद ने मुझको किया अनत प्रवासी ।
सखी नहीं रानी अँगरेजी, मैं हूँगी अब दासी ।
इसलिए साचा तुमको मैं अपना कष्ट बताऊँ ।
तप्त स्वर्ण से खरे सत्य को कैसे मैं झुठलाऊँ ?

मेरा जन्म हुआ पीड़ा-घर, पाला मुझे क्षमा ने,
आसू आँगन बचपन बीता फाका सह अनजाने ।
फूटा यौवन अंग कि काले साँपो ने धमकाया,
अँगरेजी का प्रेत कि मुझको जबरन वरने आया ।
भरी सभा मे उसने मेरा हाथ पकड़ घिसटा है,
आत्म-ग्लानि से गात जला है, भाग्य हुआ उल्टा है ।

भारतेन्दु, महावीर द्विवेदी औ, प्रसाद जय शंकर
इन लोगो ने मुझे सँभाला गिरी-पड़ी जब भू पर ।
टंडन, गांधी, गोविन्द की मैं कितनी आभारी ।
जिनने अपना कंधा देकर मेरी सजी सवारी
एन्योनी, अन्नादुराई ने भीषण घात किया है,
तुम न सुनोगे करुण-कथा तो मेरा कौन रहा है ?

दो प्रतिशत जनता की भाषा सब पर राज करेगी,
जहर भरे इस कोलाहल मे संस्कृति कहाँ बचेगी ?

क्रांति अमर है

सपनों के शत पंख तोड़कर उड़ने वाली
आजादी के वक्ष पाश में मेरा घर है

परांधीनता के कुंडल मे छिन्न पात सा
एक दिवस विष फूत्कारो से मैं था शोषित
जुल्म प्रहारो के निमम तीखे डंकों से
किया जा रहा मेरे प्राणों का दाहन नित

उसी दिवस अनुभूति जगी थी यह
मन की अमा वेदना घू होती अक्षर है

क्रांति कुमारी के पायल की स्निग्ध हास मे
यौवन के शत भानु उगो, आशा अरुणाई
सड़ा हुआ था सत्य युगों के कुंठन मे दब
दावा-सी चैतन्य हुआ फिर ली अंगड़ाई

और मरण के दशनों में प्रणय लाश भी
गरजी भीषण वधन द्वंद्वी समर अमर है

प्रज्ञाओं के महाकाश मे आजादी की
शुभ्र पताका लहरी भुज दडो मे पलपल
विद्युत गति से अधिकारों की ज्योति जली चिर
सघर्षों में बढ़ा सजन जन सपूजन बल।

निठुर समय की धूलि रौंदता चला कारवां
विध्वंसों के वसन चीर दो क्षर पतझर है

मैं मानव हूँ निखिल विश्व की महत् शक्ति हूँ
बंधन से लड मुक्त किया अभिशप्त धरा को
और जहाँ जब कभी मुक्ति की हवा बही है
मैं मानव हूँ जगा रहा संतप्त धरा को

आगत का विश्वास अनागत का मैं स्पन्दन
दग ॥ अमिय निवास भृकुटी पर प्रखर जहर है

चाहे बेधो आर पार तुम मेरे तन को
बम के स्वामी ! मन छहरा है निखिल भुवन म
चाहे कर दो कैद तिमिर क कारागृह म
नित्य अनश्वर मरी ही झकार पवन म

मैं मानव हूँ बीज मुक्ति के हरित वृक्ष का
पडता धोखा हर क्षण जागृत क्रांति अमर है ।

विद्रोह का झडा उठाओ

भीख म मिलते नही अधिकार हैं
हाथ मे विद्रोह का झडा उठाओ
ज्योति के घर पातकी अधियार का डरा
स्वग के आलोक-पथ म साँप का पहरा
फूल का पावन कलेजा धूल म लथपथ
न्याय के मुख पर पडा है रिश्वती कचरा
नाश के तट पर खडा ससार है
हो सके निर्माण की वशी सुनाओ
खेत है प्यासे कृषक के गात रोए हैं
कैद है बादल चमन मे लक्ष्य खोए हैं।
सिसकियो म डूबकर मजदूर की रानी
पीसती चक्की कि भूखे का ह सोए हैं।
हाट मे नीलाम होता प्यार है
मनुजता के भाल की कालिख मिटाओ
राह हर तनकर खडी बेरोजगारी ह
पर सिफारिश पद भवन म आपाधापी है।
डिगरियो की सिद्धियो स मुक्त दवो की
भूख ने ही आरती आकर उतारी है।
योग्यता की जीभ पर अगार है
नीचता की केन्द्र म होली जलाओ
एक दिन होगी सुबह विश्वास जीवित है
आदमी की जीत का बल भी असीमित है
झूठ की, पाखड की चट्टान के नीचे
सत्य गगा की अमर धारा सुनिश्चित है।
सूय के आगे तिमिर की हार है
आँधियो को दासिया अपनी बनाओ।

उजला और प्रभात करो

होने को हो गई सुबह पर उजला और प्रभात करो।
प्रणयदान की नही लेखनी रक्तदान की बात करो

मोहालसतज जगी भारती छूटा अभी खुमार कहा
पतझर मे स्पदन जो भर द उस बयार का प्यार कहा
त्याग वीरता के बलिदानी नारा का वह दौर कहा
राधा बिलख रही जगल म मनहर माखन चोर कहा

प्यार यहाँ क्या कुचला जाता फौलादी तलवारो से
विधवा लगती रात सुहानी पूछो चाद सितारो से
मतलब की मदिरा से पागल मुक्त हमारी सासें हैं
एक और मस्ती का आलम एक ओर जड लाशें है

निर्माणा के महाशोर मे घुटती निधन की आहे
तुम न सुनोगे मीत कहा फिर देगा कौन उसे बाह
आजादी के महाकाश म बिखरे सपना के तारे
तन के बधन कटे कहा यदि रुद्ध प्राण के चौबारे

आज तितलिया के अधरो पर शाश्वत क्या मुस्कान नही
घायल मत बीमार सुमन का झेल रही क्यो भार नही
आज हजारा हाथ काम बिन टूटे से निर्जीव हैं
बिना परिश्रम मौज उडात वे पामर और क्लीव हैं।

सुख का सपना सचमुच सपना आज समझता हैं निधन
माली ही क्यो लूट रहा है नई कली का क्वारापन
आदर्शों के भवर भवन की नीव घणित आचारा पर
शबनम के मासूम पने का भाग्य धरा अँगारा पर

भारत का भवितव्य डोलता निठुर कटीली राहो म
शहनाई क्यो रो उठती है उत्सव लगन विवाहो म
राखी वाला हाथ वहा का अविरल यह कम्पित क्यो है
कुकुम वाली मांग प्रिया की रौनक शकित क्या है
चुप रहो मत उष्ण रक्त अब नया लक्ष्य सधान करो।

भारत को खुशहाल करो या अपना जीवन दान करो
होने को हा गई सुबह पर उजला और प्रभात करो
प्रणयदान की नही लेखनी रक्त दान की बात करो

पगडडियाँ

बूंदी का पतझर

यह इतराती बहती बयार,
वृक्षो स पत्ता का झरझर !

पीपल के पीले पत्तो से
पट गयी राह हर गलियो की,
उपवन क सिहरे भीत विहग,
गुमसुम आहें हैं कलियों की।
धोकडा, नीम, पीपल, वट स
भागी हरीतिमा फइया पर !
अबुवा, रेणी औ नीबू के
तन मन पर गमका ममर स्वर !

नगे अरावली पवत पे,
ठिठुरा ठिठुरा-सा मौन क्षितिज !
उद्दड समीरण स डर डर,
गृहणियाँ सभाले पट निज निज !

यह बूदी मे उतर पतझर
अणु अणु कपित है सिहर सिहर !

जेठ की दुपहर

जेठ की जलती प्रखर दुपहर विमल
सोचता हू आज कितनी दिव्य है।
खेजडे की छाह मे लेटा हुआ
मैं बबूले की किं अचका थामकर
धर रहा हूँ तप्त रजकण माथ पर
शुभ्र स्पदन का मुकुट कुडल प्रवर।
तू विरागिन की जलक अलका अमल
लुट रही मधुज्वाल जैसी भव्य है।

माग पर चलते पथिक समुदाय के
श्याम तन पर स्वेद परियां गौर ये
हँस रही हैं कमल कुदन जाल-सी
आम्र श्रम की श्वेत झिलमिल बौर ये
लुक कहा बठे नयन सुनसान के
जो अदेखे भोर जस नव्य हैं।

पीत पत्रो मे गलत म्हावर रचा
नत्य म रत है निखिल कभावनी
घासले के द्वार पर स झाकती
इक बया किसके लिए है बावली।
कोटि किरनो की धनी नभ मूरती
युग युगो स आदमी स सध्य है।

कूप सागर ने हृदय पय अध्य मे
द दिया है प्राणधन पवि सूर्य को
नभ दिगम्बर राधिका के कत-सा
क्या बजाता है पवन के तूय को।

घास पशुदल को चराता घोष जो
नवल भारत का वही भवितव्य है।

दूरद्रष्टा चीन इव यौवन मयी
घोंकड़े पर बैठ प्रिय पर चूमती।
भग्न मंदिर की कि भीनी छाह मे
चुप कपाटें मार मैना ऊँघती।
आंधियो की वीन यह मायाविनी
और नीरद घोष सी धुन श्रव्य है।

धूप के तन पर खिला तारुण्य है
नित्य आभा से विभूषित भाल है
यह आषाढ़ी प्राण के सपने रची
गाल प्रिय की कल्पना से लाल है।
यह क्षितिज की नील पगड़ी सावनी
फागुनी दिन के बिना दृष्टव्य है।

दिवस के मन का अमर सौंदर्य स्थल
तप्त या अभिशप्त यह कैसे हुआ ?
सीखचों म काल के क्यो कैद है
धूप का मधुरिल, विकल विरही सुआ ?
प्रश्न उत्तर से उसे मतलब नही
पथ ही जिसका स्वय गतव्य है।

लू के प्रति

ओ अकुलीन, कुचालिन, विरहिन सौम्य सुंदरी
किसे ढूंढती तप्त हुतासन पर फलाये ?

लूटी है क्या किसी कान्ह ने मन की गगरी
किसी राम की या गह त्यागी सीता हो तुम ?
ओ उशीर अभिशापित तापित क्लांत किशोरी
नियम बधिक के दंड बाण से या भीता तुम ?
तरुण आम्र के स्कंध माथ धर क्रंदन करती
वृद्ध विटप के चरण थाम कर सिसकी भरती
तप्त ताप झोली ले मादक ऐंद्रजालिके !
यायावर पवमान सहचरी या गीता तुम ?

प्रतिशोधो की कौन वह्नि जन शत्रु ऐसी
जला स्वयं निज तन, परजन, परिजन जलवाय ?

रात

सलज उतरती निशा शशिधर
कलश इन्दु का स्वर्णालोकित।
तारक खचित शुभ्र साडी से
परिवेष्ठित है गात जामुनी।
नवल वधू सी सकुच नेत्र से
देख रही शुचि व्यस्त मेदिनी।

द्वार किसी गहृणी के रुककर
देख प्रतीक्षाकुल लोचन सर
बजा श्वास के मर्मर नूपुर
शिथिल हुई उर हृप गोपिनी।
बिछा दिए नीलम तालो ने
विमल माग पर उत्पल लोहित।

नीड निकेतन मे खगकुल शिशु
श्वेत ज्वार के स्वप्न विमुग्धित
युवति नीम के नरम गाल पर
अमित निबोली सीकर दीपित
दिशा निकुजो म समीर स्वप्न
चिर समाधि म नील शैत-वन
कुल क व्योम दगा के खजन
यायातो को वहा अपरिचित।
सुरभि वश रजनी गधा स
बिखरी ज्यो उर बात सुग्रथित।

अमरण प्यास युगा से प्लावित
कभी सकेगी चूम सुमन को?

छिटकी तड़ित बाल वारिद से
थाम सकेगी नहीं गगन को ?
कोलाहल का वेणु विगुंजन
मूक भित्ति का थी आवर्त्तन
संस्कृति कला सभ्यता नर्तन
पूज सकेंगे मनुज रुदन को ?
मनुज प्रेम का काव्य नहीं क्या
विश्व पत्र में होगा छंदित ?

प्रात

थकित हृदय के अमल अचल से
याद बालरवि क्रमश विकसा।

लोचन के चुप नील ताल म
प्रमुदित खिले अश्रु के अम्बुज।
विश्व विपिन म लगी थिरकने
अलसायी श्वासो की मलयज
कसकन के प्राची ललाट पर
दिया चुभन ऊषा ने चुम्बन
करने लगी विगत का वदन
सुधि आराधक स्पन्दन सत्वर।
प्यास रश्मि के तीन छुवन स
किसी गात का हिमगिरि तरसा।

चिर अभाव की ज्वलित चिता पर
दग्ध क्षणा के पाटल चटके
ध्वस्त आस के भग्न भवन स
सपना के शव के शव प्रकटे।
मधुर दाह के जग खगो की
ध्वनिया मुखरित रजत निझरी
माग रही करवटे मधुकरी
चन्द्रकाय छवि अलक नगो की
पादप अधर गूज मसर की
सिसक रही क्या वेणु ककशा।

आयु ज्यष्ठ की कडी दुपहरी
यौवन शुक्ल ओर सा रक्तिम

विरह दूत तुलसी का पौधा
मिलन प्रपत्र कुसुम-सा कृत्रिम
नेह रहित जीवन मरुस्थल मत
शुचि प्राणों का ध्येय देय हो
तृषा दिव्य युत प्रेय श्रेय हो
कीच प्रसूत करे शत शतदल
लोह अचल हर स्वर्ण बनेंगे
यदि कि प्रणय का पारस परसा।

गाँव का गीत

पुरवा की छेड़ से
खेतो की मेड़ से
गीत उठे प्यार के।
जगी जगी आई नई सूरज की किरनें
गया के संग संग बछिया चली चरने।
पच्छिम के मग मे
बादल के जग मे
रात चली हार के।

फसलो की रानियो ने हंसिया सँभाल ली,
युवको की टोलिया ने गेंती कुदाल ली।
पायल छन बोले
चुनरी सिसक डोले,
ढेर लगे ज्वार के।

जीवन खलिहान से काँटे बुहार दो।
जन-जन के आगन की पीडा ललकार दो।
कोकिल की बीन हो
गान फिर नवीन हो
फागुन-त्योहार के।

वायु से

आ चचल प्राण ओ वायु सरल !
किस आस वाम स मदिर तरल
िरती हा जग म स्पश विरल
मोहक तरा कच जाल सखी !
माहक तरा हिम भाल मखी !
सगीत भगी मदु चाल सखी !
क्यो खिली कली के वाह डाल ?
तुम थिग्ध चूमती जरुण गाल—
वन्ता की साडी का उछास !
जो हीन क्षीण हा घण्य निवल,
जो गिरता फिर फिर सँभल सँभल
जिसका जीवन झक्षा स चल—
तुम उम दान दो परस नवल !
मघप कर वह फिर गल गल
गमन्ड जीवन म हास अमल !

चतुष्पदियाँ

लावारिस सपनो की राख उडी जाती है
शहर के चौराहे पर चीलें चिल्लाती है
कटुता के खेता मैं आसू की गर्मी म
चाहो की नरम नरम कोपल जल जाती है

रिक्शे की चेन म टागे जक्ड जाती है
भटटी की ज्वाला मे चमडी पक जाती है
मिथ्या की महफिा की आज्ञाएँ ठुकरा कर
सत्य का जहर पीकर आत्मा मर जाती है

घर म औ घर बाहर मतलब का रोदन है
सोना ही बिस्तर औ सोना ही भोजन है
समता के शब्दो को दुहराना व्यथ चूकि
दिल्ली के अधो का नाच रहा शोषण है

भूख के बियाबा म दूर तक अधरा है
डगर डगर बटमारो चोरो का डेरा है
कलिया के मुखडो पर शुद्ध हसी कैस हो ?
बादल की साकल स बद खुद सवरा है

हृदय हृदय पीडा का भाई बहन लगता है
आदमी मिट्टी से लाख गुना सस्ता लगता है
काटा के साप भरे मारग पर चल कर वह
एक बार जीता और हजार बार मरता है

कौन सुबह होगी जब बालें मुस्काएगी
फूला के गहना से धरती लद जाएगी

खेतो की मेढा से चरवाही जाएगी
परदेशी सजना की आखें भर आएगी

कौन सुबह होगी वह ममता जो लाएगी
कुटिया के शापो से बिल्डिग ढह जाएगी
जनतन्त्री थाली मे खुशिया के दीप जला
कौन सुबह मजदूरिन हुलस उमग गाएगी

चाँदनी झरती है

दूर तक चादनी झरती है।
पीपल के पत्तो का ममर स्वर—
फड फड फड !
नीम की बौरायी कलियो का चटखना
चड चड चह !
कडवी सी सौरभ का दूर तक साम्राज्य !
सरोवर की
नीली और पीली सी, साँपो सी
लहरो का
छप छप छप अविभाज्य !
भूरे ऊँघते पहाडो का
आँख बाँध
चुप्प साध
हल्का सा धीमा सा
खर खर खर
तारो का
आख मीच
बदली का वसन खीच
वधुओ सा विहँसना
ह ह ह !
और इन सब म
मेरी पीडा का आलोडन
सासा का विलोडन
नीद नही ले पाता है—
निराशा का चिर दीप
बुझ नही पाता है।
च च च
हूँ हूँ हू—।
दूर तक चादनी झरती है।



गीत

यह सोने सी साझ सुनहरी
ये आभा सागर की लहरी

रूपो मे ढल सुषमा गहरी, सहमी छिपी वालिमा छाई !

लौटे खग आभा पख खोल
पत्तो का ममर रहा डोल ।

मदिर से गमके शख ढोल चदा की चूडी शरमाई ।

धीरे धीरे डरती डरती
नत लोचन घन अलक सँवारती ।

सहमी शकित भीत लहर सी सखि ! याद तुम्हारी आई ।

गीत

साझ हर
यह उजलती पाँख
व्योम उडते खग कुलो का नाद
हिया मग मे झाक

बिलख पडती है अधूरी साध
खिडकियाँ ताक
सिहर उठती मौन सासे लाद
डबडबाती आख

आज कोयो म तुम्हारी याद
स्नेह-पौधे, वेदना की खाद।

कीलें

मेरे मुख के
पीले पिचके गालों की
गंदली ऊबड़ खाबड़
घाटियों के आगोश में
बबूल के असम तने पर
उभरी गाद सी
प्रभा के काँपते
अँधे अँधेरे में
नीचे आसमान में
बिक्सी
शराबी घायल
तारिकाओं सी
खजड़े के
अशेष क्रोध की भागीदार
आभा हीन कुरूप
नोंकदार
कटक किशोरियों-सी
हृदय रहित आँगन पर
बिखरी
तीखी विषाद भरी
कँवर-कुमारियों-सी
कहीं अति दूर
निष्कपट पथरीली
भूमि में
घरती अगतिशील
बेवकूफ

शिशु-बकरियों सी
कहीं-कहीं
भिडा के छत्ता सी गडडेदार
बेशरम आचारहीन
इठलाती
अनगिनत कीलें
उभरी हुई है
मेरी उजली आत्मा पर
मेरे शरबती मानस पर
मेरी बेमोहताज वाणी पर

ए ! मन की प्यासी श्वास

ऐ ! मन की प्यासी श्वास !
उबल मत पिघल मत
क्षीर सी धीर बन !
मैं हूँ अल्हड़ एक शाप !!

दुग्ध स्नात रात आज
मक्खनी घटा की
लटें साज रेशमी
फेंकती मन स लाज
तैरती अम्बर की
नील शील झील म
नैहिल नौकायें तारो की
सपनो के बाध पाल !
सर्पीले बर्फीले पवन की
बल खाती लहरिया
सजा रही झीना नाज !
नशीली शरमीली कोपलें
तेजाबी छाया के
दपण मे
रूप देख
नन मूद

सिहरती बार बार
चाँद का देख ताज
ऐ मन की प्यासी श्वास
मैं हूँ अल्हड़ एक शाप !!
मरे मन प्रागण म—

अमा का तम अशेष,
भावो के प्रेत, शेष,
बदल कर रग वेश
घूर रहे निर्निमेष !
दद के बिच्छू अनेक
नेह की नरम
नई नगरी मे
जगाती विषैली आग,
पिघलते रहस्यपूण
बिल्लोरी कई राज ।
पीडा के यायावर
गूजा रहे यो आवाज—
गाँठो मे बाध ले
ढेर म अभाव-प्याज !
भले भविष्य म
अतीती खाद्य यें
आयेंगे निश्चय काज,
जैसे—
उफने औ भौराले
अम्बुधि म
पार का आश्वासन
देता है दढ जहाज ।
शतानी भूख वैसे
आयगी यो न बाज ॥

ऐ ! मन की प्यासी श्वास !
छेड मत याद के
करुण राग !
अनगिनत मोड भरी
पगडडी पथरीली जरूर है
लेकिन सुन बात जरा,
दूर नही स्रोत भरा
बीत रही काठ सी
घडिया यें,

जगती चल, जीती चल ।
प्यास है सुरभि
घायल रुमालें
शाप है मादकता ।।
नजर मोड मनुहारें
शरमा मत ।।

प्यार का भवन

हमारे प्यार का आलीशान भवन
जिसका उद्घाटन तुम्हारी वर्षगांठ पर हुआ
आज मेरी सालगिरह पर ढह गया है
वासना की रेतीली सीमेंट रहित
नींव पर टिका
रूप की नकली पालिश से दमका
आकर्षण के रियवती इंजीनियरों द्वारा निर्मित
कृत्रिम सौन्दर्य प्रसाधनों के
बगीचा सा सुरभित
रेशमी अवगुंठन खिसका कर
पिचके गालों और कीलों समेत
जब तुम्हें निहारता हूँ
तो लगता है
अँधेरी रात में कमरे की खिड़की खोल
पूनमी चांद को
चलनी की ओट से
देख रहा हूँ

रात

खिडकी म झाक रही चादनी नवीन
बरगद के ममर की बजती है वीन।
मनुवा बौराये अबुवा के बौर सा
नयना भर आयं अनब्याहं भार-सा।

दूर कही यादो की उठती है गध
सौरभ से घायल है शरमीले छन्द
कजरारी फैली है कसकन चहुँ ओर
खेता की मेडा स वशी का शोर।

सुधियो के पनघट पर प्यासे हैं गीत
रूपो की गगरी से उगते सव मीत।
चरवाहे सोते हैं नयना को मूद।
ढरी हाय ! कोई आख बढता ज्यो सूद।

गन्ना मे भरती है चौकडी बयार
शवनम बन चू पडा रे विरही दुलार
चम्बल की लहरो म तारो की आग
धीमे से निवुआ पर बोला कल काग।

भवराय अतर म मिलने की साध
पिपराई अखिया स ढुलती वे नाद।
देहरी पर जागता सपना का दीप
पगध्वनियाँ सजना की आती समीप।

पगलाए वना म बीती यह रैन।
प्रियतम के आवन का पूरव म सैन।

एम० आई० रोट की एक शाम

स्वप्न खोयी उर्वशी सी मुग्धा
फिल्म की उस नायिका सी मात
जो दिल भूल बैठी हो
फैशन पत्रिका के छपे उस चित्र सी घुमस्माट
जिसमे तीखी वासना का रग उभरा हो
पर सुहाती शाम उतरी वहा
जहाँ
मदगामी कारो के पिरामिडो मे
कैद
ग्रहण लगे चाद
पीतल पर चढे सोने के झोल की हँसी हँसते ह
यहाँ लोग मन का नही
शरीर का प्रदशन करत है।
सौन्दय का नही
वस्त्रो का दशन करते हैं।
और अखबारी बहस करते हैं
सरकार और पत्नी को गाली देत है
करते हैं पडोसिनो की प्रशसा

जवाहरलाल की मृत्यु पर

आह ! अब भूचाल आँधी बच गयी पागल पियक्कड़,
बुझ गया आलोक क्षण में छा गया तिमिर अँधेरा ।

है कहाँ वह रोशनी का सिन्धु कर्मों का कन्हैया
मनुजता का मन्त्र जो जग को सुनाए ।
मेदिनी का लाल जनता का जवाहर खो गया है।
आँसुओं का कोष रीता क्या लुटाए ।

मृत्यु की अनिवार्यता के सत्य सम्मुख सब मिथ्या,
सत्य केवल है धरा पर शुभ विचारों का सवेरा ।

शोक का सिन्दूर जैसे पुछ गया है निमिष भर में
लोकनायक राम फिर से चल बसे हैं ।
हो गए जड़ अश्व, सूरज रथ रुका है स्तब्ध होकर ।
प्रगति-पहिये कीच दल में फिर धँसे हैं ।

फूल की खुशबू समय का साँप झट चट कर गया है
मुक्ति विधु को आज फिर से राहुओं ने दौड़ घेरा ।

उस अयाचित दान से बलिदान से पर सत्य है यह
लोकतन्त्री आस्थाएँ कम न होंगी ।
उस महामानव बताए शुभ पथ पर कोटि जनता
आदमियत की नयी सूरत सजेगी ।

मानता हूँ दश दिशा में छा गया है घन अँधेरा
पर जवाहर के विचारों का हम करना उजेरा ।

विधवा

कौन तुम बन पतझर की मीत
' देवि ! क्यों बैठी हो चुपचाप !
नमित दृग, सित पग रे मुख पीत,
पडा किस आसू का अभिशाप !
म्लान है कृश तन, यौवन भीत,
सपन मे धुआ, दद औ भाप !
निठुर आहो का आहृन गीत,
मेघ सी ढुलती हो तुम आप !

विरस सासो का पूत समीर,
शुभे लाता है कितना ध्यान !
विहग भावो का अधिक अधीर,
पख बिन गिर पडता नादान !
झरे पत्रा सा रुग्ण शरीर
नयन म थके रूप के बान !
हृदय म जग जम जाती पीर
अहे, जगती क सडे विधान !

हाय ! भोले कवि, कोकिल बाल,
बढा क्या मन्वन्तर का भार,
गुनागे मेरी व्यथा विशाल,
सरल मन पर ला ला कर ज्वार !
हड्डियो का मेरा ककाल,
कैद प्राणो म प्रेम पुकार,
प्रश्न मैं क्रूर जगत की चाल,
छिन्न मेरे अन्तर क तार !'

अहो, मा ! दो मुझको शुभ शक्ति,
हरूँ मैं तेरा हाहाकार
मात ! तेरे चरणो की भक्ति,
करे सब पीडा का उपचार !
जगत को रूढि धम स मुक्ति
और माँ ! तुझको पुलकाचार
द सकू द कर सब अनुरक्ति
अमर हो तेरे सपन अपार !

अमत-नेयनी चली प्राण म ज्वाला लेकर
काव्य तुम्हारा शुद्ध युद्ध प्लावन अनुप्रेरक !
वश भास्कर ओ सतसई म मुखग स्वर भर
द दिया वीरता का ही ज्यो चिरकठ पर्यायक !
गौरव गरिमा करने लगी तुम्हारा अचन !

ओ राजस्थानी भाषा के साधक-चातक,
कौन स्वाति स बूद ग्रहण करके ओ गायक !
बून्दी धो कर गए धाम, गत ईर्षा सायक !
हाडौती रज ही क्या तरी भाव निधायक !
अंध धरा पर ज्योति उतारी भर आलिगन !

जब तक जीवित प्रणय धार, तब तब तुम जीवित,
जब तक पूजित विजय भाव तब तब तुम पूजित,
जब तक चर्चित काव्य सुनो तब तक तुम अर्चित,
जब तक वन्दित देश प्रम तब तब तुम वन्दित !
दव दान दो मुझको साहस शील चिरतन !
ओ वाणी के अमर पुत्र लो मेरा वन्दन !

□□



नाम स्व०श्री शम्भूदत्त शर्मा, आत्मज प० रामकृष्ण शर्मा

जन्म 4 जुलाई 1939 बूंदी

शिक्षा एम० ए० (अर्थशास्त्र) साहित्यरत्न, बी० एड० ।

रचना धर्मिता मूलत कवि हृदय रह कर अपनी अनुभूतियो को गीत-कविता म ढाला। अनुभूतियो की *अभिव्यजना, पीडा और कवि की कसक* चिरन्तन वेदना की अनुभूति कराने म समर्थ है।

जनता की आवाज(कोटा),ललकार(चित्तोड), आजाद (अजमेर),गजराज प्रकाश(अलीगढ), आदि साप्ताहिको म मुख्य पृष्ठो पर स्थान पाया।

कहानियो और कविताओ का सृजन तथा हाडोती के लोकगीतो का सकलन भूले बिसर गीतो को इस काव्य सकलन के रूप मे सहेजा।

शिक्षण काय व्याख्याता अर्थशास्त्र के पद पर जयपुर, कोटा एव बूंदी जिले के उच्च माध्यमिक विद्यालयो म अध्यापन काय किया।

देहावसान 18 जून 1975 (*छत्तीस वर्ष की अल्पायु*) में) ब्लड कैंसर के असाध्य रोग स।